* ओ३म् *

आर्षग्रन्थावलि ।

केन-उपनिषद्

हिन्दी भाष्य समेत

भाष्य कर्ता

राजाराम संस्कृत प्रोफैसर

डी०ए०वी० कालिज लाहौर ।

इसमें परब्रह्म का स्वरूप, उसकी महिमा, प्राप्ति के उपाय, और मोक्ष का वर्णन है ।

अक्तूबर १९२१

बाम्बे यन्त्रालय लाहौर में छपवाया ।

चौथी वार २०००]   [मूल्य ≡)

केन-उपनिषद्-(भूमिका)

"केन" इस उपनिषद का सब से पहला पद है, इस लिये इस का नाम केनोपनिषद् प्रसिद्ध हो गया है, और यह नाम असली नाम की अपेक्षा आसान भी है।

(१) इसका नाम और वेद से सम्बन्ध

पर इसका असल नाम "तलवकार-उपनिषद्" है, क्योंकि यह उपनिषद् "तलवकार ब्राह्मण" में से लीगई है, जो कि सामवेद की तलवकार शाखा का ब्राह्मण है। अतएव इस उपनिषद का सम्बन्ध सामवेद से है। अथर्ववेदीय उपनिषदों में भी यह एक पाई जाती है, पर इस के तुल्य उसके भाग नहीं हैं, और पाठ में भी कहीं २ भेद है।

(२) तलवकार ब्राह्मण का परिचय

स्वामी शंकराचार्य लिखते हैं, कि सामवेदीय तलवकार ब्राह्मण के नौ अध्याय हैं; पहले आठ अध्यायों में कर्मों का निरूपण करके प्राणोपासन, पांचभक्तिकसामोपासन, साप्तभक्तिक-सामोपासन और गायत्रसामविषयक उपासना का उपदेश करके पश्चात् वंशब्राह्मण पढ़ा है। तदनन्तर नवम अध्याय से ब्रह्मविद्या (यह उपनिषद्) आरम्भ होती है। *

१८७८ ई० में डाक्टर बरनल को सामवेद का एक ब्राह्मण मिला था, जिस में यह उपनिषद् और वह सारे उपदेश पाये जाते हैं, जो शंकराचार्यने इस ब्राह्मण में बतलाये हैं। भेद यह है कि शंकराचार्य

---

* यह सारी उपासनाएं जो तलवकारब्राह्मण में बतलाई गई हैं, छान्दोग्य उपनिषद् में भी पाई जाती हैं।

के अनुसार यह उपनिषद् नवम अध्याय है, पर इस ग्रन्थ के अनुसार चतुर्थ अध्याय है, और इसका अन्तिम भाग आर्षेय ब्राह्मण है ।

(३) इस उपनिषद् का विषय

इस उपनिषद् का विषय यह है, कि ब्रह्म चेतन सर्वज्ञ और नियन्ता है, उसका केवल स्वरूप मन बाणी की पहुंच से परे है । सब उसकी महिमा से महिमा वाले हैं, उसका सहारा छोड़कर सब शक्तिहीन हैं । वह इस समस्त विश्व का आत्मा है । उसकी प्राप्ति उसकी उपासना से और तपश्चर्या आदि साधनों के अनुष्ठान से होती है ।

[४] इस उपनिषद् का शान्ति पाठ ।

सामवेदीय उपनिषदों का शान्ति पाठ यह है—

आप्यायन्तु ममांगानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्मनिराकारोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु । तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु—

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

अर्थ—मेरे अंग पूर्ण हों, बाणी, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, बल और सारे इन्द्रिय पूर्ण हों । उपनिषद् में कहा हुआ ब्रह्म पूर्ण है, मैं ब्रह्म को नहीं भूलूं, ब्रह्म मुझको न भूले, यह न भूलना हो, न भूलना मेरे लिये हो । इस प्रकार उस अन्तरात्मा में मग्न होने पर जो उपनिषद् में धर्म हैं, वह मुझ में हों, वह मुझ में हों ।

पहला खण्ड—(अध्यात्मनियन्ता का वर्णन)।

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचामिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ १ ॥

शब्दार्थ—(केन, इषितं) किससे चाहा हुआ (पतति) गिरता है (प्रेषितं) भेजा हुआ (मनः) मन (केन, प्राणः, प्रथमः) किस से मुख्य प्राण (प्रैति, युक्तः) चलता है आज्ञा दिया हुआ (केन, इषितां, वाचं) किससे चाही हुई वाणी को (इमां) इस (वदन्ति) बोलते हैं (चक्षुःश्रोत्रं, कः, उ, देवः युनक्ति) नेत्र और श्रोत्र को कौन देव आज्ञा देता है।

अन्वयार्थ—(शिष्य पूछता है, कि) किससे चाहा हुआ भेजा हुआ मन गिरता है, किससे आज्ञा दिया हुआ मुख्य प्राण चलता है, किससे चाही हुई इस वाणी को बोलते हैं, कौन देव नेत्र और श्रोत्र को आज्ञा देता है।

भाष्य—प्रश्न का अभिप्राय यह है, कि वह कौनसी शक्ति है जिसके नियम में इस जड़ प्रकृति में से जीवन की धारा बहने लगती है। जिसकी इच्छा से, जिसकी प्रेरणा से इस शरीर में मन आकर प्रवेश करता है, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय प्रवेश करते हैं, और फिर जीवनपर्यन्त उस नियन्ता की दी हुई आज्ञा का पालन करते रहते हैं। इस प्रकार यह प्रश्न परम आत्मा के विषय में है ॥

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद् वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः। चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य

धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ २ ॥

श-(श्रोत्रस्य, श्रोत्रं) श्रोत्र का श्रोत्र (मनसः, मनः, यत्) मन का मन जो (वाचः, ह, वाचं) वाणी का सचमुच वाणी (सः, उ) वह ही (प्राणस्य, प्राणः) प्राण का प्राण (चक्षुषः, चक्षुः) नेत्र का नेत्र (अतिमुच्य) अतिमुक्त होकर=आज़ाद होकर (धीराः) धीरः (प्रेत्य) मरकर (अस्मात्, लोकात्) इस लोक से (अमृताः, भवन्ति) अमृत होते हैं।

अ-(गुरु उत्तर देता है) वह श्रोत्र का श्रोत्र, मन का मन, वाणी का वाणी, प्राण का प्राण और नेत्र का नेत्र है। (उसके जानने वाले) धीर पुरुष (प्रकृति की फांसों से) मुक्त होकर इस लोक से मरकर अमृत होते हैं।

भाष्य-वह श्रोत्र के अन्दर रहकर श्रोत्र को नियम में रखता है, और श्रोत्र में जो शक्ति है, उसका आश्रयदाता है, इस लिये परमआत्मा श्रोत्र का श्रोत्र है, इसी प्रकार मन का मन आदि है। वह धीर पुरुष जो इस प्राकृत श्रोत्रादि से आज़ाद होकर श्रोत्र के श्रोत्र पर पहुंचजाते हैं, वह इस लोक से मरते ही अमृत होजाते हैं। उनके अमृत होने में इतना ही विलम्ब है, कि जब तक यह शरीर नहीं छूटता है।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्, अन्यदेव तद् विदितादथो अविदितादधि, इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥ ३ ॥

श-(न, तत्र) न वहां (चक्षुः, गच्छति) नेत्र पहुंचता है,

(न, वाग् गच्छति) न बाणी पहुंचती है (नो,मनः) न ही मन (न, विद्मः) नहीं समझते हैं, (न, विजानीमः) नहीं जानते हैं (यथा एतत्, अनुशिष्यात्) जैसे इसका उपदेश करे (अन्यत्, एव,तत्, विदितात्) निरालाही वह जाने हुए से (अथो) और (अविदितात्, अधि) न जाने हुए से अलग (इति,शुश्रुम, पूर्वेषां) यह सुना है बड़ों से (ये, नः, तत्, व्याचचक्षिरे) जो हमारे लिये उसका व्याख्यान करते भए ।

अ-वहां न नेत्र पहुंचता है, न बाणी पहुंचती है, न ही मन*, हम नहीं समझते हैं, नहीं जानते हैं, कि जैसे कोई उसका उपदेश करे । वह निराला ही है जाने हुए से, और अलग है न जाने हुए से । यह हमने (अपने) बड़ों से सुना है, जो हमारे लिये इसका व्याख्यान करते भए ॥

भाष्य-जिसको हम नेत्रों से प्रत्यक्ष देखते हैं, उसको बड़ी अच्छी तरह बतलासक्के हैं। नेत्रों से न देखे हुए भी पूर्वजों के चरित्र को सुनकर वा पढ़कर पूरा २ समझासक्के हैं। चम्बे और केवड़े के गन्ध का भेद जो बाणीसे भी नहीं समझा समझाया जासक्का, उसको मनसे जानसक्के हैं। पर यहां न नेत्र की पहुंच है, क्योंकि परमआत्मा रूपरहित है, न बाणी की पहुंच है, क्योंकि पढ़ने सुननेवाले कोई भी उसकी थाह नहीं पाते हैं, न मनसे ही समझा जाता है, क्योंकि मन की पहुंच से भी परे है। निदान वह हमारी जानी हुई सब वस्तुओं से निराला है, उसको कैसे बतलाएं, हां वह अविदित नहीं है, हम उसको जानते अवश्य हैं। यही उपदेश हमें अपने बड़ों से मिला है। और इतना ही हम कह सकते हैं।

---

*इन्द्रियों की पहुंच से परे है। मिलाओ (ईश ४, कठ ६। १२ मुण्ड० ३।१।८ तैत्ति। २।४)

संगति–संक्षेप से कहे हुए विषय को सविस्तर कहते हैं–

यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ४ ॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् । तदेव०*
॥५॥ यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति ।
तदेव०॥६॥ यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं
श्रुतम् ॥ तदेव० ॥७॥ यत् प्राणेन न प्राणिति येन
प्राणः प्रणीयते । तदेव० ॥ ८ ॥

(यद्) जो (वाचा, अनभ्युदितं) बाणी से नहीं बोला जाता है (येन, वाग्, अभ्युद्यते) जिससे बाणी बोली जाती है (तत्, एव) उसको ही (ब्रह्म,त्वं,विद्धि) ब्रह्म तू जान (न, इदं) न यह (यत्,इदं, उपासते) जिस इसको उपासते हैं ॥४। (यत् मनसा, न, मनुते) जो मन से नहीं सोचता है (येन, आहुः) जिससे कहते हैं (मनः,मतं) मन सोचा हुआ (तदेव०*) ॥५॥ (यत्,चक्षुषा,न, पश्यति) जो नेत्र से नहीं देखता है (येन,चक्षूंषि, पश्यति)जिससे नेत्रों को देखता है (तदेव०)॥६॥ यत्, श्रोत्रेण, न शृणोति) जो श्रोत्र से नहीं सुनता है (येन, श्रोत्रं, इदं, श्रुतं) जिससे श्रोत्र यह सुना गया है (तदेव०)॥७॥ (यत्, प्राणेन, न, प्राणिति) जो प्राण से सांस नहीं लेता है (येन,प्राणः, प्रणीयते) जिससे प्राण चलाया जाता है (तदेव०) ॥ ८ ॥

अ–जो बाणी से नहीं बोला जाता, जिससे बाणी बोली जाती है, उस ही को तू ब्रह्म जान, न यह, जिस इसको उपासते हैं ॥४॥ जो मन से नहीं सोचता है, जिससे मन सोचा गया है, उस ही को० ॥५॥ जो नेत्र से नहीं देखता, जिससे नेत्रों को देखता

*इसके आगे वही पिछला पाठ पढ़ो ।

है उस ही को०॥६॥ जो श्रोत्र से नहीं सुनता है, जिससे यह श्रोत्र सुना गया है, उस ही को० ॥७॥ जो प्राण से सांस नहीं लेता है, जिस से प्राण चलाया जाता है, उस ही को० * ॥८॥

दूसरा खण्ड (ब्रह्म की दुर्विज्ञेयता का वर्णन)।

संगति–गुरु शिष्य के ज्ञान की परीक्षा चाहता हुआ कहता है–

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथनु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥१॥

श–(यदि, मन्यसे, सुवेद, इति) यदि समझता है पूरा २ जानता हूं यह (दभ्रं, एव,) थोड़ा ही (अपि,नूनं) निः सन्देह (त्वं,वेत्थ,ब्रह्मणः, रूपं) तू जानता है ब्रह्म का रूप (यत्,अस्य,त्वं) जो इसका तू (यत्,अस्य,देवेषु) जो इसका देवताओं में (अथ,नु) तब निःसन्देह (मीमांस्यं, एव) विचारने योग्य ही (ते) तुझे (मन्ये) समझता हूं (विदितं) जाना हुआ ॥

अ–यदि तू समझता है, कि मैं उसको पूरा २ जानता हूं, तो निःसन्देह तू ब्रह्म का स्वरूप अल्प ही जानता है, इसका स्वरूप जो तू (जानता है) और जो देवताओं में है (वह भी अल्प ही है)। तब मैं समझता हूं, कि तुझे अपना जाना हुआ अभी विचारने योग्य है।

---

* वाणी से उपासना-वाणी द्वारा प्रकाश करना, अर्थात् ब्रह्म वह है जो वाणी से प्रकाशित नहीं होता, किन्तु वाणी के प्रकाश का निमित्त है। वह ब्रह्म नहीं, जो वाणी से प्रकाशित हो सका है। इसी प्रकार ५, ६, ७, ८ श्लोकों का अभिप्राय समझो।

भाष्य-ब्रह्म जो देशकाल की सीमा से परे है, उसका पूरा जानना (अन्त पाना) असम्भव है। सो यदि कोई ऐसा कहे, कि मैं उसको पूरा जानता हूं, तो यह उसका अज्ञान है, और ब्रह्म को बहुत छोटा समझना है, ब्रह्म का वह स्वरूप, जितना मनुष्य जान-सक्ता है, बहुत थोड़ा है, बल्कि वह भी बहुत थोड़ा है, जितना इन सारी दिव्य शक्तियों में समाया हुआ है। क्योंकि—

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः (ऋग् १०।९०।३)

यह इतनी बड़ी (सारा विश्व) इसकी महिमा है, और वह परम पुरुष इससे बड़ा है॥

संगति-शिष्य इसके उत्तर में कहता है—

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ॥
यो नस्तद् वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ।२।

श-(न, अहं,मन्ये) न मैं मानता हूं (सुवेद, इति) पूरा २ जानता हूं यह (नो,न,वेद) न ही नहीं जानता हूं (वेद,च) जानता भी हूं (यः, नः, तत् , वेद) जो हममें से उसको जानता है (तत् वेद) उसको जानता है (नो. न, वेद, इति) न ही नहीं जानता हूं, यह (वेद, च) और जानता हूं॥

अ-मैं यह नहीं मानता, कि मैं पूरा २ जानता हूं, न ही यह कि नहीं जानता हूं, क्योंकि जानता हूं। हम में से जो कोई उस (ब्रह्म) को जानता है, वह (मेरी) इस (बात) को जानता है, कि मैं न ही नहीं जानता और (न ही) जानता हूं॥

भाष्य-'ब्रह्म है' इस में मुझे अज्ञान, भ्रान्ति वा संशय नहीं, तथापि उस अपार का कोई पार नहीं पासक्ता हूं। इसलिये न मैं

यह कहता हूं, कि मैं उसे पूरा २ जानता हूं, और न ही यह कि नहीं जानता हूं। यह बात विरुद्ध नहीं, किन्तु अनुभवसिद्ध है। इसकी सचाई को वह अनुभव करेगा, जिसने उसको पहचाना है।

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥ ३ ॥

श-(यस्य, अमतं) जिसके अमत=न समझा हुआ (तस्य, मतं) उसके मत=समझा हुआ (मतं, यस्य, न, वेद, सः) मत जिसके, नहीं जानता वह (अविज्ञातं, विजानतां) अज्ञात जानने वालों को (विज्ञातं, अविजानतां) ज्ञात न जानने वालों को।

अ-जिसके वह अमत है, उसके मत है, और मत है जिसके, वह उसे नहीं जानता है, क्योंकि वह जानने वालों को अज्ञात है और न जानने वालों को ज्ञात है।

भाष्य-यथार्थ ज्ञान होने पर मनुष्य यही समझता है, कि किस प्रकार मैं समुद्र की मछली होकर समुद्र का अन्त लेसक्ता हूं, छोटा सा पक्षी होकर अनन्त आकाश का अन्त लेसक्ता हूं, इसलिये जो उसको समझ गये हैं, वह यह समझे हैं, कि वह समझ से ऊपर है। अतएव जिनकी प्रतिज्ञा (दावा) है, कि हम उसको जान गये, वे अज्ञानी हैं, और जो ज्ञानी हैं, वह इस प्रतिज्ञा को छोड़ देते हैं।

संगति-कब और कैसे ज्ञात होता है और उसके ज्ञान से क्या फल मिलता है:—

प्रतिबोध-विदितं मतममृतत्वं हि विन्दते ।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ।४।

श-(प्रतिबोध-विदितं, मतं) प्रतिबोध से ज्ञात हुआ समझा जाता है (अमृतत्वं) मोक्ष को (हि) क्योंकि (विन्दते) पाता है

(आत्मना, विन्दते, वीर्यं) आत्मा से पाता है बल को (विद्यया, विन्दते, अमृतं) विद्या से पाता है मोक्ष को।

अ-प्रतिबोध से ज्ञात हुआ समझा जाता है, क्योंकि (इसके द्वारा) मोक्ष को पालेता है। पहले आत्मा से पुरुष बल को पाता है, फिर विद्या से मोक्ष को पाता है ॥

भाष्य-प्रतिबोध=जाग उठना। जैसे सोया हुआ पुरुष अपने आप से बे-खबर होता है। इसी तरह हमारा आत्मा अपने आप से बेखबर सोया हुआ है। इस बेखबरी को दूर करके अपने आपको पहचान लेना ही उसका जाग उठना है। इस प्रकार जब वह जागता है, तो अपने स्वरूप में अपने परमात्मा के दर्शन पाता है *।—

"यदात्मतत्वेन तु ब्रह्मतत्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्। अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः=जब वह सावधान होकर आत्मतत्व के दीपक से उस ब्रह्मतत्त्व को देख लेता है, जो अजन्मा अटल है, और सारे तत्त्वों से शुद्ध (निखरा हुआ) है, तब वह उस देव को जानकर सारी फांसों से छूट जाता है (श्वेता० १। १५) यह शुद्ध स्वरूप का ज्ञान मन से नहीं होता, किन्तु आत्मा से ही होता है, अतएव यहां आत्मा के जागने से कहा है। इसका फल अमृतत्त्व है। यह जागना ही आत्मबल है, आत्मबल सम्पन्न होने से ही परमात्मा का ज्ञान होता है, और परमात्मज्ञान से मोक्ष होता है।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महतीविनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥५॥

---

* मिलाओ कठ० ३। १४ गीता २। ६९।

श-(इह, चेत्, अवेदीत्) यहां यदि जान लिया (अथ, सत्यं, अस्ति) तो सत्य है (न चेत्) नहीं यदि (इह, अवेदीत्) यहां जाना (महती, विनष्टिः) बड़ी हानि (भूतेषु, भूतेषु, विचिन्त्य) भूतों भूतों में जानकर (धीराः) धीर (प्रेत्य) मरकर (अस्मात् लोकात्, अमृताः, भवन्ति) इस लोक से अमृत होते हैं।

अ-यहां (इसी जन्म में) ही यदि जान लिया, तो ठीक है, यदि यहां नहीं जाना, तो बड़ी हानि है। (अतएव) धीर (पुरुष) भूतों भूतों (सब भूतों) में उसको जानकर इस लोक से अलग हो अमृत होते हैं।

तीसरा खण्ड—ब्रह्मस्वयंसर्वशक्ति है और सबको शक्ति दे रहा है।

संगति-जिस तरह नेत्र को अपनी शक्ति दिखलाने में बाह्य प्रकाश की सहायता अपेक्षित है, इसी प्रकार अग्न्यादि समस्त दिव्य शक्तियों को अपनी अपनी शक्ति दिखलाने में ब्रह्म की सहायता अपेक्षित है। उसके बिना अग्नि एक तिनका भी जला नहीं सकता और वायु उड़ा नहीं सकता। इनकी सारी महिमा उस ब्रह्म के ही सहारे पर है, इस तात्पर्य को दर्शाने के लिये यह यक्ष की आख्यायिका अलंकार रूप से रची गई है:—

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त, त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति। १।

श-(ब्रह्म) ब्रह्म (ह) सचमुच (देवेभ्यः विजिग्ये) देवताओं के लिये विजय को प्राप्त हुआ (तस्य, ह, ब्रह्मणः, विजये) उस ब्रह्म के विजय में (देवाः, अमहीयन्त) देवता महिमा वाले बने

(ते, ऐक्षन्त) वह जाने (अस्माकं, एव, अयं, विजयः) हमारा ही यह विजय (अस्माकं, एव अयं, महिमा) हमारी ही यह महिमा ।

अ–ब्रह्म देवताओं के लिये विजय को प्राप्त हुआ । उस ब्रह्म के विजय में देवता महिमावाले बन बैठे । उन्हों ने जाना कि यह हमारा ही विजय है, हमारी ही महिमा है ।

भाष्य—अग्नि वायु आदि जो अपनी २ क्रिया द्वारा रोगोत्पादक दोषों (असुरों) पर विजय पाते रहते हैं, यह विजय ब्रह्म का है । ब्रह्म ने इनका यश बढ़ाने के लिये इनके द्वारा यह विजय लाभ किया है, पर मनुष्य इनका अपना स्वतन्त्र विजय समझ लेता है । यह उसकी भूल है ।

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव ।
तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥ २ ॥

श० (तत्,ह, एषां, विजज्ञौ) वह इनको जान गया (तेभ्यः, ह, प्रादुर्बभूव) उनके लिये प्रकट हुआ (तत्,न, व्यजानन्त) उन्हों ने उसको नहीं जाना (किं, इदं, यक्षं, इति] कौन यह यक्ष है यह ।

अ–वह [ब्रह्म] इन [देवताओं के अभिप्राय] को जान गया वह उनके लिये प्रकट हुआ पर उन्होंने नहीं जाना कि "यह यक्ष * कौन है" ।

---

* यक्ष=पूजनीय । अथर्व १० । ७ । ३८ में परम आत्मा को यक्ष कहा है-"महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्ध परित इव शाखाः" =वह तप में आगे बढ़ा हुआ बड़ा यक्ष भुवन के मध्य में सलिल (प्रकृति) से परे है । जितने देवता हैं, सब उसी का सहारा लिये हैं, जैसे वृक्ष के स्कन्ध पर सब ओर शाखा होती हैं (वृक्ष की सारी हरीभरी शाखाएं उसीसे हरीभरी होतीहैं जो बड़ा डाल उनको अपने अन्दर से जीवन भेज रहा है । इसी प्रकार सारे देवताओं का जीवन भी वही एक ब्रह्म है) ।

तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद् विजानीहि किमेतद्यक्षमिति । तथेति ॥ ३ ॥

श०-(ते, अग्निं, अब्रुवन्) वह अग्नि को कहने लगे (जातवेदः, एतत्, विजानीहि) हे जातवेद ! इसको जान (किम्, एतत् यक्षं) कौन यह यक्ष (इति) यह (तथा, इति) बहुत अच्छा

अ०-उन्होंने (देवताओं) ने अग्नि को कहा 'हे जातवेदः ! इसको जान, कि यह यक्ष कौन है' ? (अग्नि ने उत्तर दिया) बहुत अच्छा ।

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत्कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मी त्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥ ४ ॥

श०-(तत् अभ्यद्रवत्) उसके पास दौड़ गया (तं, अभ्यवदत्) उसको कहा (कः, असि) कौन है (इति) यह (अग्निः, वै, अहं अस्मि) अग्नि मैं हूं (इति, अब्रवीत्) यह कहा (जातवेदः, वै, अहं अस्मि) जातवेदा मैं हूं (इति) यह ।

अ०-(अग्नि,) दौड़कर (यक्ष) के पास गया, (यक्ष ने) उसको कहा "तू कौन है" ? (अग्नि ने उत्तर दिया) "मैं अग्नि हूं, मैं जातवेदा हूं* " ।

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीद ँ सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ ५ ॥

श०-(तस्मिन्, त्वयि) उस तुझ में (किं,वीर्यं,इति) क्या वीर्य है, यह (अपि, इदं सर्वं, दहेयं) चाहे इस सारे को जला दूं (यत्, इदं, पृथिव्यां, इति) जो यह पृथिवी में यह ।

---

* अपने दोनों प्रसिद्ध याज्ञिय नाम गौरव के तौर पर लिये हैं ।

अ०-(यक्ष ने पूछा) तुझमें क्या वीर्य (शक्ति) है (अग्नि ने उत्तर दिया) चाहूं तो इस सारे को जलादूं, जो कुछ यहां पृथिवी में है।

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्नशशाक दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ ६ ॥

श०-(तस्मै, तृणं, निदधौ) उसके लिये तिनका रक्खा (एतत्, दह, इति) इसको जला यह (तत्, उपप्रेयाय) उसके पास गया (सर्वजवेन) सारे वेग से (तत्, न, शशाक, दग्धुं) उसको नहीं जला सका (सः, ततः, एव, निववृते) वह उससे ही लौटा (न, एतत्, अशकं, विज्ञातुं) नहीं इसको सका जान (यत्, एतत्, यक्षं, इति) जो यह यक्ष, यह ।

अ०-(यक्ष ने) उसके लिये एक तिनका रक्खा, कि इसको जला । (अग्नि) सारे वेग से उस (तिनके) के पास गया, पर वह उसको जला नहीं सका । वह उसीसे (उतने से ही) लौटा (और आकर देवताओं को कहा) मैं इसको नहीं जानसका जो यह यक्ष है ॥

अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमिति तथेति ॥ ७ ॥

श०-(अथ, वायुं, अब्रुवन्) तब वायु को कहा (वायो) हे वायु* ! (एतद्०)

अ०-तब उन्होंने वायु को कहा, हे वायु इसको जान कि यह यक्ष कौन है ? (उसने कहा) बहुत अच्छा ।

---

* एतत्, विजानीहि इत्यादि का शब्दार्थ पूर्व मन्त्र ३ में लिख दिया है ॥

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत् कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥८॥

अ०-* (यह कहकर) वह दौड़कर उसके पास गया (यक्ष ने) उसको पूछा तू कौन है ? (उसने उत्तर दिया) मैं वायु हूं, मैं मातरिश्वा † हूं।

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीद ँ सर्व माददीय यदिदं पृथिव्यामिति ॥ ९ ॥

अ०-(यक्ष ने पूछा) ऐसे तुझमें क्या वीर्य है (वायु ने उत्तर दिया) चाहूं तो मैं इस सारे को उड़ादूं जो कुछ यह पृथिवी में है।

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स ततएव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति ॥ १० ॥

अ०-(यक्ष ने) उसके लिये एक तिनका रक्खा, कि इसको उड़ा। वह सारे वेग से उसके पास गया, पर वह उसको उड़ा नहीं सका। वह उतने से ही लौटा (और आकर देवताओं को कहा) मैं इसको नहीं जान सका, जो यह यक्ष है।

अथेन्द्रमब्रुवन् मघवन्नेतद विजानीहि किमेतद यक्षमिति तथेति तदभ्यद्रवत् तस्मात् तिरोदधे ॥११॥

अ०-तब उन्होंने इन्द्र को कहा, हे मघवन् ! इसको जान, कि यह यक्ष कौन है ? [उसने कहा] बहुत अच्छा [यह कहकर] दौड़कर उसके पास गया [पर यक्ष] उससे छिप गया।

---

* ८, ९, १०, का शब्दार्थ पूर्व ४, ५, ६ में उक्त प्राय है।

† वायु=बहने वाला और मातरिश्वा=आकाश में फैलने वाला।

स तस्मिन्नेवाकाशे ऽस्त्रियमाजगाम बहुशोभ-मानामुमां हैमवतीं ता ऽंहोवाच किमेतद् यक्षमिति१२

श०–(सः, तस्मिन्, एव, आकाशे) वह उस ही आकाश में (स्त्रियं, आजगाम) स्त्री को मिला (बहुशोभमानां) बड़ी शोभा वाली (उमां) उमा (हैमवतीं) सुनहरी भूषणों वाली (तां,ह,उवाच) उसको कहा (किं, एतत्, यक्षं, इति) कौन यह यक्ष यह ॥

अ–वह उसी आकाश में बड़ी शोभावाली सुनहरी भूषणों वाली उमा नामी स्त्री को मिला, उससे पूछा कि " यह यक्ष कौन है " ॥

चौथा खण्ड ब्रह्म का ज्ञान-अधिदैवत और अध्यात्म ।

सा ब्रह्मेतिहोवाच ब्रह्मणो वा एतद् विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥१॥

श–(सः ब्रह्म, इति, ह, उवाच) उसने "ब्रह्म" यह कहा (ब्रह्मणः, वै, एतत्, विजये) ब्रह्म के यह विजय में (महीयध्वं इति) महिमा वाले बनो यह (ततः,ह,एव) उससे ही (विदाञ्चकार ब्रह्म, इति) जाना ब्रह्म यह ॥

अ–उस (उमा) ने कहा 'यह ब्रह्म है' । ब्रह्म के विजय में ही तुम महिमा वाले बनो (अपनी महिमा समझो) उसी [के वचन] से ही उसने जाना कि 'यह ब्रह्म है' ॥ १ ॥

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्र स्तेह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुस्ते ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २ ॥

श–[तस्मात्] इसलिये [वै] निश्चित [एते,देवाः]यह देवता [अतितरां,इव] बढ़कर ही [अन्यान्,देवान्] दूसरे देवताओं को

(यत् अग्निः, वायुः इन्द्रः) जो कि अग्नि वायु इन्द्र (ते, हि) वह ही (एनत्, नेदिष्ठं, पस्पर्शुः) इसको अत्यन्त निकट छूते भये (ते, हि) वह ही (एनत्, प्रथमः, विदाञ्चकार) इसको पहले जानते भए (ब्रह्म, इति) ब्रह्म यह ॥

अ—इसलिये यह देवता दूसरे देवताओं से बढ़ कर हैं, जो कि अग्नि वायु और इन्द्र हैं क्योंकि यह ही उसको अत्यन्त निकट छूते भए, और यह ही इसको पहले जानते भए कि 'यह ब्रह्म है'॥

तस्माद् वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान् सह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श सह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥३॥

अ—इस लिये इन्द्र दूसरे देवताओं से बढ़कर है, क्योंकि वह इस को अत्यन्त निकट छूता भया, और वह इस को पहले जानता भया, कि यह ब्रह्म है ॥

भाष्य—यह यक्ष का संवाद कोई भूतार्थवाद (यथार्थ इतिवृत्त) नहीं, न ब्रह्म ने कोई रूप धारण किया, न अग्नि आदि से अलग हुआ। चैतन्य स्वरूप रूप नहीं धरता, और सर्वव्यापक किसी से अलग नहीं होसकता। किन्तु यह सारी कल्पना है। तात्पर्य यह है, कि इस जगत् में सारी महिमा ब्रह्म की है। वही अग्नि को जलने, वायु को चलने, और सूर्य को चमकने का सामर्थ्य देता है। उस के बिना यह सब जगत् निकम्मा है। जिस तरह बाह्य प्रकाश से अलग होकर नेत्र देख नहीं सकते, इसी तरह ब्रह्म से अलग होकर ये कुछ नहीं कर सकते। बाह्य प्रकाश हमारे नेत्रों से अलग हो जाता है, इस लिये हमें इस बात का तो निश्चय है, कि बाह्य प्रकाश के बिना नेत्र नहीं देखते। पर ब्रह्म कभी इनसे अलग नहीं होता,

इस लिये हमें निश्चित नहीं होता कि इन का यह सामर्थ्य ब्रह्म के साथ में है। यदि ब्रह्म इनसे अलग होजाय, तो अग्नि एक सूखा तिनका नहीं जला सकेगा और वायु नहीं उड़ा सकेगा, यह सब निर्वीर्य होजाएंगे, यह इस कल्पना का पहला तात्पर्य है। दूसरा यह, कि उसको वह जानता है, जिस को ब्रह्मविद्या जितलाती है। तीसरा यह, कि उसको जानने वाला ही सब से बड़ा है॥

यहां अग्नि वायु और इन्द्र ये तीनों देवता हैं। अग्नि वायु तो पृथिवी और अन्तरिक्ष के देवता प्रसिद्ध हैं। इन्द्र से तात्पर्य यहां सूर्य हो सकता है, क्योंकि 'एष एवेन्द्रो य एष तपति'=यही इन्द्र है, जो यह तप रहा है (शत० १।६।३।१८) इत्यादि में इन्द्र का अर्थ सूर्य बतलाया गया है, और यह ही अग्नि वायु के साथ तीसरा देवता द्यौलोक का प्रसिद्ध है। अब इन्द्र से यक्ष के छिप जाने का यह अभिप्राय है, कि पृथिवीस्थ अग्नि और अन्तरिक्षस्थ वायु यह सूर्य से नया जीवन पाते रहते हैं, पर सूर्य किसी दूसरे से जीवन नहीं पारहा, इस लिये सूर्य में जाकर उस से परे उसका भी जीवन दाता और है, यह मति लोप हो जाती है, यही यक्ष का इन्द्र से छिपना है। अब सूर्य से भी परे सूर्य को दीप्त करने वाला तेज और है, यह ब्रह्मविद्या से ही जाना जाता है, अतएव कहा है 'येनसूर्यस्तपति तेजसेद्धोनावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्'' = जिस तेज से दीप्त होकर सूर्य चमकता है, उस बड़े (तेज) को वह नहीं जानता है, जो वेद नहीं जानता (तैत्ति० ब्रा० ३।१२।९) सो यह ठीक है कि सूर्य का सूर्य ब्रह्मविद्या से ही जाना जाता है, यही इन्द्र का उमा को मिलना और उस के वचन से अपनी महिमा के असली स्रोत अर्थात् यक्ष को जानना है। अब यद्यपि इस सृष्टि

का एक २ अणु इस परमात्मा की महिमा से भरा हुआ है, तथापि इस त्रिलोकी के तीन मुख्य देवता अग्नि, वायु और सूर्य ही इस जगत् को जीवन और शोभा देरहे हैं, ये तीनों परमात्मा की महिमा के जाज्वलन्त उदाहरण हैं, इनसे ब्रह्म की महिमा का सविशेष प्रकाशना ही इनका ब्रह्म को निकटतर स्पर्श करना है, और यही इनका जानना है। और इनमें से भी सूर्य इस महिमा के दर्शन में प्रधान है। इस लिए सूर्य और भी निकट स्पर्श करने वाला और पहले जानने वाला कहा है।

यहां अधिदैवत अधिकार में इन्द्र से सूर्य देवता ही विवक्षित होसकता है, जीवात्मा नहीं। जीवात्मा में इन्द्र शब्द की प्रसिद्धि भी नहीं है। सूर्य अर्थ में पूर्वोक्त शतपथीय प्रमाण और अन्यान्य बहुत से प्रमाण हैं (प्रश्न) यहां इन्द्र को उसका जानने वाला कहा है, जानना सूर्य में नहीं घट सकता, इस लिए इन्द्र से जीवात्मा लेना चाहिये (उत्तर) यहां जानना उपचार (लक्षणा) से कहा है, जैसे अग्नि आदि का उस के पास जाना और बात चीत करना आदि है। अन्यथा इन्द्र का अर्थ जीवात्मा लेकर भी अग्नि और वायु का ब्रह्म को जानना कैसे संगत हो सकता है। सो जैसे अग्नि वायु का उसको जानना औपचारिक है, वैसे ही सूर्य का भी औपचारिक है। और प्रकरणसंगत सूर्य ही हो सकता है॥

तस्यैष आदेशो यदेतद् विद्युतो व्यद्युतदा३इती न्न्यमीमिषदा३इत्यधिदैवतम् ॥४॥

श-(तस्य, एषः, आदेशः) उस का यह उपदेश (यत्, एतत्) जो यह (विद्युतः, व्यद्युतत्, आ) बिजुली के चमकने के

सदृश (इत्) ठीक (न्यमीमिषत्, आ) झपकने के सदृश (इति, अधिदैवतं) यह अधिदैवत ॥

अ-(ब्रह्म) का यह उपदेश ठीक ऐसा है, जैसे बिजली का चमकना और आंख का झपकना होता है, यह अधिदैवत (देवता विषयक उपदेश) है ॥

भाष्य-ब्रह्म का यह वर्णन जो देवताओं के सम्बन्ध में है, इस तरह पर है, जैसे विद्युत् चमकती है, तो उसका प्रकाश सारे फैल जाता है, और उसके सम्मुख नेत्र चुंधिया कर मिच जाते हैं, इसी तरह जब इन देवताओं में उस देवों के देव का प्रकाश अनुभव होता है, तो वह प्रकाश होते ही सारे विश्व को घेर लेता है, सर्वत्र दृष्टि आने लगता है, और उसके सम्मुख शेष सारी दिव्य शक्तियां मिचजाती हैं, उसके तेज के सामने अपना तेज नहीं दिखला सकतीं ॥

संगति-अधिदैवत उपदेश के अनन्तर अब अध्यात्म (अपने अन्दर) उपदेश कहते हैं :—

अथाध्यात्मं यदेतद् गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः ॥५॥

श-(अथ, अध्यात्मं) अब अध्यात्म (यत्, एतत्) जो यह (गच्छति, इव) जाता है मानो (च) और (अनेन) इस से (च) (उपस्मरति) समीप स्मरण करे (अभीक्ष्णं, संकल्पः) बार२ ध्यान।

अ-अब ध्यात्म (उपदेश कहते हैं कि) यह मन जो मानो (ब्रह्म में) जाता है इस से उसका समीप स्मरण करे, अर्थात् बार २ ध्यान (जमाए) ॥

भाष्य-पूर्व कह आए हैं, 'नो मनो गच्छति' (१।३) 'वहां मन नहीं जाता है' सो यद्यपि वहां मन की पहुंच नहीं है,

तथापि मनकी गति को दूसरी तर्फों से रोक २ कर परमात्मा का ही हृदय में स्मरण करना मानो मन को परमात्मा तक पहुंचा देना है क्योंकि इस भक्तिभाव से प्रसन्न होकर परमात्मा स्वयं अपने भक्त के आत्मा में प्रकाशित होते हैं ॥

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एत-देवं वेदाभिहैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥ ६ ॥

श-(तत्,ह) वह=ब्रह्म (तद्-वनं) उसका प्यारा=मन का प्यारा (नाम) नाम (तद्-वनं, इति, उपासितव्यं) उसका प्यारा है ऐसे उपासने योग्य है (सः,यः,एतत्,एवं,वेद) वह जो इस को इस तरह उपासता है (अभि+*ह) (एनं) इसको (सर्वाणि, भूतानि) सारे प्राणधारी (+संवाञ्छन्ति) प्यार करते हैं ॥

अ-ब्रह्म मन का प्यारा है। (प्रियतम नाम है) सो वह (मेरे) मनका प्यारा है ऐसा जानते हुए उपासने योग्य है। वह जो इसको इस प्रकार उपासता है,सारे भूत उसको प्यार करते हैं।

संगति-ब्रह्मविद्या का उपसंहार करते हुए अब शिष्य को उसके साधन बतलाते हैं—

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद्ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥ ७ ॥

श-(उपनिषदं, भोः ब्रूहि,इति) उपनिषद् को भगवन् कहो, यह (उक्ता, ते, उपनिषद्) कह दी है तुझे उपनिषद (ब्राह्मीं, वाव, ते, उपनिषदं, अब्रूम, इति) ब्रह्मसम्बन्धी सचमुच तुझे उपनिषद कह दी है यह ॥

---

* "अभि" उपसर्ग को "संवाञ्छन्ति" के साथ मिलाओ ।

अ-(गुरु कहता है हे सौम्य ! तू ने यह कहा था कि) भगवन् मुझे उपनिषद् कहो, सो तुझे उपनिषद् कह दी है ब्रह्म से सम्बन्ध रखने वाली उपनिषद् (रहस्य) तुझे पूरी बतलादी है ॥

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ८ ॥

श-(तस्यै) उसके (तपः, दम', कर्म) तप दम और कर्म (इति) यह (प्रतिष्ठाः) पाओं (वेदाः, सर्वाङ्गानि) वेद सारे अंग (सत्यं, आयतनं) सत्य घर ॥

अ-तप दम और कर्म* उस (उपनिषद् के पाओं हैं वेद (शेष) सारे अंग हैं, और सचाई घर है ॥

संगति-अब समाप्ति में इस विद्या का फल कथन करते हैं—

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥ ९ ॥

श-(यः) जो (वै) (एतां, एवं, वेद) इसको ठीक २ जानता है (अपहत्य, पाप्मानं) परे फैंक कर पाप को (अनन्ते, स्वर्गे, लोके, ज्येये) अन्तरहित स्वर्ग लोक श्रेष्ठ में (प्रतितिष्ठति, प्रतितिष्ठति) प्रतिष्ठित होता है प्रतिष्ठित होता है ॥

अ-जो इस (उपनिषद्) को ठीक २ जानता है, वह पाप को परे फैंककर अन्तरहित और सबसे श्रेष्ठ स्वर्ग लोक† में प्रतिष्ठित होता है, प्रतिष्ठित होता है‡ ॥

समाप्त हुआ

---

* तप, शीत उष्ण, स्तुति निन्दा, हानि लाभ, जय पराजय, मान अपमान, सुख दुःख आदि द्वन्द्वों को सहारना। दम, इन्द्रियों का दमन=रोकना। कर्म वेदोक्त अग्नि होत्रादि। मिलाओ मुण्डक ३।१।५

† अन्तरहित स्वर्गलोक=ब्रह्मलोक है। देखो उपनिषदों की शिक्षा चौथा भाग ॥ ‡दो बार पाठ ग्रंथ की समाप्ति का चिन्ह है ॥